ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 179-181

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-II, Issues-20, YEAR- June-2021

अकेलेपन का आख्यान

प्रियेश कुमार तिवारी Email- - sinugupta803@gmail.com

Received- 04.06.2021, Revised- 08.06.2021, Accepted - 10.06.2021

सारांश : 'अकेली' मन्नू भंडारी की बहुत आरंभिक कहानियों में से एक है। उस समय के अपने रचनात्मक स्वभाव को याद करते हुए मन्नू भंडारी 'मेरी प्रतिनिधि कहानिया' की भूमिका में कहती हैं–''उस समय छोटी–छोटी घटनाएं–व्यक्ति के सुख–दुःख इतना उद्वेलित करते थे कि अपने ही बन जाते थे। उन पर लिखते हुए लगता था कि जैसे हम अपने को ही उड़ेल रहे हैं। और आज चारों ओर बड़ी–बड़ी घटनाएं घटती रहती हैं, पर फिर भी कुछ व्यापता ही नहीं ? तो क्या उस समय मन बहुत कोमल था और संवेदनाएं बेहद नर्म–नाजुक–हर किसी का दुःख अपने में समो लेने को तत्पर ?

कुंजीभूत शब्द– आरंभिक कहानियों, रचनात्मक स्वभाव, संवेदनाए अकेलेपन।

लंबा अरसा बीत जाने के बाद आज भी 'अकेली' मन्नू भंडारी की बेहद लोकप्रिय और बार–बार कथा–संकलनों और पाठ्यक्रमों के लिए चुनी जाने वाली कहानी है। उसकी दीर्घजीविता को उसके कालजयी होने का प्रमाण समझा जा सकता है।

पहली नजर में पर 'अकेली' भावुकता के तंतुओं से रचित एक सरल और मर्मस्पर्शी कहानी प्रतीत होती है। वैसे तो एक कहानी की सफलता का इतना कारण भी अपने आप में पर्याप्त है लेकिन मन्नू भंडारी के रचनात्मक कौशल का विशेष लक्षण यह है कि वे कथा के सरल भावपूर्ण कलेवर में भी विचार की एक तह लगाती हैं। और उसे अस्तर की तरह कहानी अपना अंतर्मन बना देती हैं। तब कहानी भावुकता के अश्रुगलित मनोभाव में सबल वैचारिक परिप्रेक्ष्य पहनकर मर्मस्पर्शी भी बनी रहती है और विश्लेषण की धार सहने की योग्यता भी अर्जित कर लेती है।

लेखिका ने कहानी की शुरूआत 'अकेली' की नायिका सोमा बुआ के परिचय से की है–

सोमा बुआ बुढ़िया है। सोमा बुआ परित्यक्ता है। सोमा बुआ अकेली है।

ये तीन सरल वाक्य इस तरह एक के बाद एक अलग–अलग तीन पंक्तियों में अंकित होकर कहानी का उद्घाटन करते हैं और जबरदस्त नाटकीय प्रभाव पैदा करते हैं। नियतिलेख के उद्घोष की तरह सुनाई देते हैं मानो इस विवरण के साथ चित्रित पात्री का जीवन की मुख्यधारा से कटे होना सूचित होता है। पैंसठ वर्ष पहले जब यह कहानी लिखी गई थी तब किसी स्त्री के इस विवरण के स्वाभाविक रूप से जुड़ जाने वाला निष्कर्ष रहा करता होगा–'अभागिन'।

लेकिन सोमा बुआ अपनी उत्कटजिजीविषा, अनत्व देनेकी क्षमता और जुड़ने तथा जोड़ने की लालसा के द्वारा अपने अकेलेपन के प्रतिकार में व्यस्त दिखाई देती है–कभी सफल और उसकी उमंग में अपने आपे को भूली हुई तो कभी असफल भी–और स्वयं अपने प्रयत्न की हास्यास्पद दयनीयता में करूण।

जैसे–जैसे कहानी आगे खुलती है, वैसे–वैसे सोमा बुआ का चरित्र एक प्रतिनिधि अर्थवत्ता धारण करता जाता है। वह हमारे आस–पास के उपयोगितावादी समाज और उपभोक्तवावादी व्यवस्था में लुप्त होते हुए ऐसे पात्रों की प्रतिनिधि बनकर उभरती आती है जिनके अकेले केंद्रविहीन जीवन में अपनी प्रासंगिकता के तात्कालिक कारण किन्हीं परिस्थितियों में शेष नहीं रहे हैं, जीवन का कोई प्रकट मकसद नहीं दिखाई देता लेकिन फिर भी जो अप्रासंगिक होने से इंकार करते हैं और अकेले दम अपने बूते पर सार्थकता और सोद्देश्यता का अर्जन करने संकल्प धरते हैं। भले ही अपने अभियान को इन शब्दों में नहीं पहचानते। सोमा बुआ के जीवन की मुख्य घटना जवान बेटे का निधन कहानी शुरू होने के बरसों पहले ही घटित हो चुकी है। दुर्घटना सोमा बुआ और उनके पति दोनों के ही जीवन में घटित हुई है लेकिन दोनों अलग–अलग ढंग से इस सदमें का सामना करते हैं। पुत्र वियोग सहने में असमर्थ होकर पति ने संन्यास ले लिया है और साल में ग्यारह महीने तीर्थवासी रहते हैं। सोमा बुआ के पास ऐसा कोई विकल्प नहीं है। वे पति के निर्णय के नतीजे में परित्यक्ता हैं, ''मैं तो इनसे कहती हूं कि जब पल्ला पकड़ा है तो अंत समय में भी साथ रखो, सो तो इनसे होता नहीं। सारा धरम–करम ये ही लूटेंगे, सारा जस ये ही बटोरेंगे और मैं अकेली पड़ी–पड़ी यहां इनके नाम को रोया करूं''

लेकिन बुआ का जीवट है कि परित्यक्ता की नियति को वे दुर्भाग्य की तरह ढोती नहीं है। साठ–पैंसठ साल पहले की भी यह कहानी ऐसी किसी बद्धमूल धारणा का पोशण नहीं करती कि पति की उपस्थिति मात्र से स्त्री का जीवन सौभाग्यशाली हो उठता है। वास्तविकता इसके विपरित है,पति से बिछोह के ग्यारह महीने उनके लिए पति की उपस्थिति के एक महीने की तुलना में कहीं अधिक सुखद बीतते हैं–''कभी उन्होंने पति की प्रतीक्षा नहीं की, उनकी राह में आंखें नहीं बिछाई। जब तक पति रहते, उनका मन और भी मुरझाया हुआ रहता, क्योंकि पति के स्नेहहीन व्यवहार का अंकुश उनके रोजमर्रा के जीवन की अबाध गति से बहती स्वच्छंद धारा को कुंठित कर

शोध अध्येता– हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-II, Issues-20, YEAR- June-2021

देता. उस समय उनका घूमना–फिरना, मिलना–जुलना बंद हो जाता.''

मोहल्ला भारतीय सामाजिक जीवन की ऐसी इकाई है जिसे परिवार भावना का सामाजिक विस्तार कहा जा सकता है। अकेली सोमा बुआ भी शायद मुहल्ले के हर घर को नातों–रिश्तों के जाल में समेटकर अपने लिए भई–भतीजे, बेटी–बेटे नाती–पोते पा लेती है। सोमा बुआ के लिए एक ओर यह अपने जीवन को दूसरों के जिए उपयोगी बनाने का, खुद को अपनी मूल्यवत्ता का अहसास देने का और सबसे बढ़कर, अपने भवनात्मक शून्य को भरने का तरीका है।

कहानी में चित्रित वर्तमान अवधि में बुआ के पति की वार्षिक उपस्थिति का समय है और भी अभी बुआ के साथ उनके पति की कहासुनी होकर चुकी है–''यों तो मैं कहीं आऊं–जाऊं सो ही इन्हें नहीं सुहाता, और फिर कल किशोरी के यहां से बुलावा नहीं आया। अरे, मैं तो कहूं कि घरवालों का कैसा बुलावा! वे लोग तो मुझे अपनी मां से कम नहीं समझते, नहीं तो कौन भला यों भट्टी और भंडारघर सौंप दें''

ऐसे प्रसंगों में अपनत्व के दावे के अलावा अपनी कुशलता का अहसास भी बुआ के अहं को अतिरिक्त तृप्ति देता है। कभी वह दूसरों के फूहड़पन के परिहास को तो कभी अपने कौशल के बखान का रूप ले लेता है। (1) ''एक काम गत से नहीं हो रहा था। अब घर में कोई बड़ा–बूढ़ा हो तो बतावे, या कभी किया हो तो जानें. गीतवाली औरतें मुंडन पर बन्ना–बन्नी गा रही थीं। मेरा तो हंसते–हंसते पेट फूल गया।''

(2) ''भट्टी पर देखो तो अजब तमाशा–समोसे कच्चे ही उतार दिए और इतने बना दिए कि दो बार खिला दो, और गुलाब जामुन इतने कम कि एक पंगत में भी पूरे न पड़े। उसी समय मैदा सानकर नए गुलाब जामुन बनाए। दोनों बहुएं और किशोरीलाल तो बेचारे इतना जस मान रहे थे कि क्यां बताऊं, कहने लगे, 'अम्मां! तुम न होतीं तो आज भद्द उड़ जाती. अम्मां! तुमने जाल रख ली!''

इस आचरण का सबसे महत्वपूर्ण, कोमल तथा करूण पक्ष है अपने भावनात्मक सूनेपन को दूसरों के सुख में शामिल होकर भरने की कोशिश –''मेरा अपना हरखू होता और उसके घर काम होता तो क्या मैं बुलावे के भरोसे बैठी रहती ? मेरे लिए जैसा हरखू वैसा किशोरीलाल! आज हरखू नहीं है, इसी से दूसरों को देख–देखकर मन भरमाती रहती हूँ''

किशोरीलाल के घर से बुलावा न आना–कहानी में इस विवरण का संकेत क्या है? सोमा बुआ को मोहल्ले में अनाकृत, उपेक्षित, जबरदस्ती की बिन बुलाए मेहमान बताकर उनके पति के रोष को औचित्य प्रदान करना या कि सोमा बुआ के अपनत्व और औदार्य का चित्रण करना जिसकी वजह से वह बिन बुलाए जा पहुंचने के अनौचित्य को अदेखा कर देती हैं? बुआ के इस स्वभाव का परिचय कहानी में यूं दिया गया है.....

''इस स्थिति में बुआ को अपनी जिंदगी पास–पड़ोस वालों के भरोसे ही काटनी पड़ती थी. किसी के घर मुंडन हो, छठी हो, जनेऊ हो, शादी हो या गमी, बुआ पहुंच जाती और फिर छाती फाड़कर काम करतीं, मानो वे दूसरे के घर में नहीं, अपने ही घर में हों।''

कहानी में सोमा बुआ के पक्ष का ही व्याख्या–विस्तार सामने आता है जिसमें आत्मतोष निचोड़ लेने की कोशिश ही प्रमुख है। शायद यह बुआ का आत्म–छल हो लेकिन दोनों ही स्थितियों में यह उनकी तरफ से व्यर्थता के अहसास और अकेलेपन के प्रतिकार का प्रयास है। मुहल्ला–संस्कृति का एक निष्ठुर पक्ष भी कहानी सामने रखती है जो कहानी के सामाजिक पक्ष में निहित परतों का उद्घाटन करता है। इस तरह अकेले और फालतू हो गए व्यक्तियों की सेवा भी लोग यूं ग्रहण करते हैं मानो अहसान कर रहे हों, सेवा करना मानो करने वाले की अपनी गरज हो। इस निश्ठुरता का एक और रूप कहानी में सामने आता है जिसे बुआ के जीवन की थकान और हताशा का चित्रण करने के लिए इस्तेमाल किया गया है।

बुआ को पता चलता है कि पच्चीस साल पहले चल बसे देवर के समधी के यहां कोई शादी है। उत्सव के लिए उनकी उमंग षुरू में तो इस असमंजस में दबी रहती है कि पच्चीस साल पहले की बात है, पता नहीं बुलाएंगे भी या नहीं। लेकिन पड़ोस के एक परिवार में बुआ को बताया जाता है कि ''अरे, वहा बुआ! तुम्हारा नाम कैसे नहीं हो सकता! तुम तो समधिन ठहरीं. संबंध में रहे न रहे, कोई रिश्ता थोड़े ही टूट जाता है!'' ..... ''है, बुआ, नाम है। मैं तो सारी लिस्ट देखकर आई हूं.'' बुआ के लिए यह अपनी इच्छा का समर्थन है अतः वे आश्वस्त हो जाने के तैयार बैठी हैं, एकदम आगे सरककर बुआ ने बड़े उत्साह से पूछा, '' तू अपनी आंखों से देखकर आई है नाम? नाम तो होना ही चाहिए।'' लेकिन इस पड़ोसी परिवार की स्त्रियों के लिए महज एक चुहल जो कहानी के अंत तक जाते–जाते बुआ की निष्फल हताश प्रतीक्षा के परिप्रेक्ष्य में हृदयहीनता का चिह्न बन जाती है।

एक राधा बहू है, बुआ के प्रति सहानुभूति से भरी, यथासंभव उनके सुख–दुख की संगिनी। एक किशोरीलाल है, जिसके यहां से बुलावा भेजना तो भूल गया है लेकिन बुआ के जा पहुचने और फैला–बिखरा काम संभाल लेने पर कृतज्ञ हुआ जाता है, और एक पड़ोसी परिवार की स्त्रियां हैं जो पच्चीस बरस पहले के अपरिचित समधी के यहां निमंत्रण की बात को अकारण ही आंखों देखी पुष्टि देकर निष्ठुर परिहासवष बुआ के मन की उमंग को ललक में बदल देती हैं, बुआ अंगूठी बेचकर उपहार का प्रबंध करती हैं और सारे दिन बुलावे की प्रतीक्षा का अंत शाम की निराश थकान भरी उसांस में उड़ेल देती हैं।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-II, Issues-20, YEAR- June-2021

'अकेली' की संरचना सरल और शैली वर्णनात्मक है. सीधा मर्मस्पर्शी. 'प्रतिनिधि कहानियां' के संकलन की भूमिका में मन्नू भंडारी अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में बताती हैं–

कितने व्यक्ति हमारे संपर्क में आते हैं–कितनी घटनाओं के हम साक्षी होते हैं लेकिन उनमें से लिखने के लिए तो हमें केवल वे ही प्रेरित करती हैं जो पात्रें और कथानक के सरे ताने–बाने के बीच हमारी भावनाओं, मूल्यों और मान्यताओं को भी स्वर देती हैं ..... केवल इतना ही नहीं, अपनी निजता से परे व्यापक संदर्भों से जुड़कर जो हमारे लेखन को अर्थवान भी बनाती हैं।''

इस कहानी की भावानात्मक ऊर्जा उसकी प्रमुख पात्री के साथ लेखिका के तादात्म्य में से फूटती है–'अकेली' अपनी सारी शिल्पगत अनगढ़ता और कच्चेपन के बावजूद मुझे आज भी बहुत अपनी लगती हैं। कोई चालीस–पैंतालीस (अब साठ–पैंसठ) पहले की वह अकेली बुढ़िया, जो दूसरों से जुड़ने की ललक में मोहल्ले के हर घर में बिन बुलाए जाकर काम करती–हारी बीमारी में रात–रातभर जागकर सेवा करती, शादी–ब्याह, तीज–त्यौहार पर हाड़–तोड़ मेहनत करती, पर फिर भी वह कभी उनकी नहीं हो पाई।

'अकेली' कहानी पर टेलीविजन फिल्म भी बनाई गई। पूर्वोक्त संकलन की भूमिका में मन्नू जी ने इसकी चर्चा की है–"इस पर बने टी0वी0 प्ले को देखते समय मेरी एक मित्र ने पूछा था कि इसका नाम अकेली क्यों रखा? यह तो एक ऐसी औरत की कहानी है, जो सबके साथ जुड़ी हुई है।" भूमिका में मन्नू भंडारी ने एक प्रतिप्रश्न रखा है– पर क्या केवल अपनी ओर से दूसरों के साथ जुड़कर ही कोई अपने अकेलेपन से मुक्त हो सकता है? क्या इसके लिए यह जरूरी नहीं कि दूसरे भी भावना के स्तर पर उससे जुड़ें–उसे अपनों की सूची में शामिल करें, उसके सुखः दुःख के भागीदार बने.?

हमारे बदलते हुए समाज और लुप्त होते मूल्यों के संसार में वृद्ध, असहाय, अकेले लोगों के लिए जगह नहीं बची है। लेखिका का यह कथन इस टिप्पणी को एक उपयुक्त समापन देता है–

मन–प्राण से दूसरों के साथ जुड़ना–वे फिर घर के बाहर हों या बाहर के–इनकी मजबूरी है और जिससे जुड़े, उससे उपेक्षा पाना इनकी नियति! कहानी लिखते समय तो इन पात्रों की इस त्रास–भरी नियति ने ही मुझे झकझोरा था, पर आज तो जैसे हर जगह, हर परिवार में किसी–न–किसी स्तर पर अकेलेपन की यह अनुगूंज सुनाई देती है। कहीं पीढ़ियों के अंतराल के कारण फालतू हो आए अकेलेपन का बोझ ढोते मां–बाप, तो कहीं अपनी ही पीढ़ी के बीच अपनी अनसमझी आकांक्षाओं के कारण उपेक्षा का दंश झेलते युवा लोग।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मन्नू भंडारी : ''महाभोज'' सन् 1979.
2. जगदीश चन्द्र : धरती धन न अपना।
3. मोहन नैमिशराय : अपने–अपने पिंजरे (भाग–एक 1995 ई0 भाग–दो सन् 2000).
4. ओम प्रकाश बाल्मिकी : जूठन सन् 1997.
5. सूजन पाल चौहान : तिरस्कृत सन् 2002.
6. डॉ0 तुलसी राम : मुर्दहिया सन् 2010.
7. राहुल सांकृत्यायन : वोल्गा से गंगा तक ।
8. उग्रः फागुन के दिन चार।
9. रांगेय राघव : कब तक पुकारूं।
10. फणीश्वर नाथ ''रेणु'' : मैला आँचल, परती परिकथा, पल्टू बाबू रोड।
11. अमृतलाल नागर : सतरंज के मोहरे, अमृत और विष।
12. उदयशंकर भट्ट : लोक–परलोक।

*****